परमागम प्रवेशिका

भाग–3 एवं 4

लेखिका

विद्वत्रत्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

बी.ए.ऑनर्स, एम.ए., पी.एच.डी. (स्वर्णपदक प्राप्त)

मो. 09321295265 / Email: dpptmumbai@gmail.com

मुंबई (महाराष्ट्र)

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए–4, बापूनगर, जयपुर – 302015

फोन : (0141) 2705581, 2707458

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

परमागम प्रवेशिका भाग–3 एवं 4 : विद्वत्‌रत्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

● प्रथम संस्करण : 1 हजार
(1 जनवरी, 2022)

● E-book प्रथम संस्करण
(25 मई, 2016)

मूल्य : **आठ रुपये**

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स,
ए–4, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर
60 पूनम विहार
जगतपुरा, जयपुर

विषय–सूची

परमागम प्रवेशिका भाग–3

1.	मोक्षमार्ग	1
2.	सम्यग्दर्शन	3
3.	आत्मानुभूति	5
4.	लब्धि	6
5.	मिथ्यात्व	8
6.	गुणस्थान	10
7.	कार्य परमात्मा और कारण परमात्मा	12
8.	अकर्त्तावाद	13
9.	क्रमबद्धपर्याय	15
10.	पाँच समवाय	16
11.	कार्य–कारण	17
12.	उपादान कारण	18
13.	निमित्त कारण	19
14.	वस्तु	20
15.	अनेकान्त और स्याद्वाद	21
16.	प्रमाण	23
17.	नय	25
18.	अध्यात्म के नय	26
19.	आगम के नय	28
20.	लेश्या	29
21.	समुद्‌घात	31
22.	जीव के असाधारण भाव	33
23.	कारक	36
24.	पर्याप्ति	37
25.	ध्यान	39

परमागम प्रवेशिका भाग–4

1.	परमात्मा का स्वरूप	40
2.	निर्जरा	42
3.	अध्यवसान (अध्यवसाय)	42
4.	गुणश्रेणी निर्जरा	43
5.	सत्ता	44
6.	सम्यग्दर्शन के दोष	46
7.	वैभाविक गुण शक्ति	47
8.	पंचाचार	50

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'प्रश्नोत्तरमाला भाग–1' की लेखिका डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया बचपन से ही प्रतिभाशाली रही हैं। उन्होंने पूत के लक्षण पालने में ही नज़र आ जाते हैं – कहावत को चरितार्थ किया है। विद्वत्ता की दृष्टि से वे पिताश्री डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के पदचिन्हों पर ही चल रही हैं। उनके द्वारा अभी तक छोटी–बड़ी 51 पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। जिनकी सूची आगे प्रकाशित की गई है।

साथ–ही–साथ आपने जैन सिद्धान्तों पर आधारित अनेक 'गेम्स' भी बनाए हैं, जिनके खेलने के नियम भी जैन सिद्धान्तों का ज्ञान कराते हैं। इन 'गेम्स' की विशेषता यह है कि इनको खेलने से बच्चों को सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ अहिंसात्मक आचरण की प्रवृत्ति भी सहज विकसित हो जाती है। इनमें जीत हिंसात्मक कार्य मार–पीट से नहीं, ज्ञान–ध्यान से हासिल की जाती है। बच्चों को ज्ञान–ध्यान करने की प्रेरणा मिलती है।

आपने 'आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार एक समालोचनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध कर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। आपने अपने शोध ग्रन्थ में शोध समीकरणों (rules and regulations) को ध्यान में रखते हुए आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों और टीकाकारों का सर्वांगीण (सम्पूर्ण) विवेचन सरल–सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया है, जो कि विद्वत्‌जन और बुद्धिजीवी वर्ग के साथ–साथ जनसामान्य को भी अपनी ओर आकृष्ट (attract) करता है।

आपके द्वारा लिखी गई बाल पुस्तकें भी अद्यावधि (अब तक) जैन समाज में प्रचलित अन्य पाठ्यपुस्तकों से भिन्न शैली, रंगीन चित्रमय प्रस्तुति एवं मूल तत्वज्ञान के समावेश के कारण अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं।

आपकी सभी कृतियाँ अध्यात्मरस से सराबोर और भेदज्ञान से ओतप्रोत हैं। आप विभिन्न आयुवर्ग को ध्यान में रखकर भिन्न–भिन्न शैली में अध्यात्म को सरल भाषा में जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास कर रही हैं।

जिनागम के मर्म को समझने के लिए जिन सिद्धान्तों की जानकारी प्रत्येक पाठक को अनिवार्य है, उनकी प्रारम्भिक जानकारी देना ही प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य है। शीघ्र प्रकाशन व्यवस्था के लिए डॉ. अखिल बंसलजी का बहुत आभार है।

–परमात्मप्रकाश भारिल्ल
कार्यकारी महामंत्री

अपनी बात

जब मैं कॉलेज समय में दर्शनशास्त्र (Philosophy) पढ़ती थी, तब सभी दर्शनों के विशेष शब्दों, पदों, सिद्धान्तों (Concept) के संबंध में अलग से विशेष तौर पर पढ़ाया जाता था। तभी से मेरे मन में था कि जैनदर्शन के सभी मुख्य सिद्धान्तों का भी इसतरह का एक जगह संग्रह होना चाहिए। मैंने छोटे दादा (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल) से भी इस संबंध में अनेक बार चर्चा की, लिखने का आग्रह किया; पर उन्होंने यह कार्य मुझे ही सौंप दिया। मेरी उस भावना की कुछ-कुछ पूर्ति प्रस्तुत पुस्तक परमागम प्रवेशिका भाग-3 में होती है। इसमें मैंने उन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की संक्षिप्त जानकारी 268 प्रश्नोत्तरों के माध्यम से दी है, जिनकी जानकारी के बिना जिनागम का मर्म समझा नहीं जा सकता।

परमागम प्रवेशिका भाग-4 में उन विषयों की संक्षिप्त जानकारी है, जिनमें परमागम ऑनर्स पढ़ते समय छात्र कोर्स से हटकर कुछ विशेष जानकारी चाहते हैं अथवा जिन विषयों में शंका (Confusion) अधिक होती है। प्रत्येक वर्ष के छात्रों के मन में उठने वाली शंकाओं के समाधान इसमें दिए गए हैं।

परमागम के सभी छात्र इसका (E-book) से लाभ उठा रहे हैं। सभी पाठक भी इससे लाभान्वित हों, इसी भावना से अब इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

– डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

कीमत कम करने में सहयोग

1.	श्री महेश जे. पारेख, मुम्बई	2100.00
2.	श्रीमती संगीता गाँधी, अमरावती	1500.00
3.	श्रीमती कंचन देवी जैन, कुरावली	1100.00
	कुल राशि	**4700.00**

परमागम ऑनर्स के सभी विद्यार्थियों को श्रीमान के.सी. जैन, जयपुर वालों की ओर से सप्रेम भेंट।

परमागम प्रवेशिका (भाग–3)

1. मोक्षमार्ग

प्रश्न 1 – मोक्षमार्ग किसे कहते हैं?

उत्तर – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की एकतारूप रत्नत्रय को मोक्षमार्ग कहते हैं।

प्रश्न 2 – दुःखों से छूटने का उपाय क्या है?

उत्तर – दुःखों से छूटने का उपाय रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) है।

प्रश्न 3 – मोक्षमार्ग कितने प्रकार का है?

उत्तर – मोक्षमार्ग एक ही प्रकार का है, लेकिन उसका निरूपण दो प्रकार से होता है – निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग।

प्रश्न 4 – निश्चय मोक्षमार्ग से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धि की उत्पत्ति और वृद्धि ही निश्चय मोक्षमार्ग है।

प्रश्न 5 – व्यवहार मोक्षमार्ग से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – निश्चय मोक्षमार्ग के साथ होने वाले शरीराश्रित व्रत, शील, संयमादि के शुभ परिणाम व्यवहार मोक्षमार्ग है।

प्रश्न 6 – निश्चय सम्यग्दर्शन से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – आत्मश्रद्धान ही निश्चय सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न 7 – निश्चय सम्यग्ज्ञान से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – आत्मज्ञान ही निश्चय सम्यग्ज्ञान है।

प्रश्न 8 – निश्चय सम्यक्चारित्र से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – आत्मलीनता ही निश्चय सम्यक्चारित्र है।

प्रश्न 9 – व्यवहार सम्यग्दर्शन से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – देव-शास्त्र-गुरु और सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान ही

व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न 10 – व्यवहार सम्यग्ज्ञान से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – जीवादि सात तत्त्वों का संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहित ज्ञान व्यवहार सम्यग्ज्ञान है।

प्रश्न 11 – व्यवहार सम्यक्चारित्र से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – सम्यग्दर्शन सहित शुभपरिणाम और उसके निमित्त से होने वाले बाह्य आचरण को व्यवहार सम्यक्चारित्र कहते है। यह दो प्रकार का होता है – देशचारित्र और सकलचारित्र।

कैसा विरोधाभास है मुझमें?

पर्यायों में नज़र आता हूँ,
द्रव्य हूँ मैं।
नष्ट भी होता हूँ मैं,
स्थिर भी रहता हूँ मैं।
अजब विरोधाभास है मुझमें!
शुद्धात्मा हूँ मैं।
संसार में भी रहता हूँ।
सिद्ध में भी रहता हूँ।
सिद्धात्मा में भी रहता हूँ,
शुद्धात्मा में भी रहता हूँ।
अजब विरोध विरोधाभास है मुझमें!
शुद्धात्मा हूँ में।

–डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

To be continue at page no.4

2. सम्यग्दर्शन

प्रश्न 1 – सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर – आत्मा में 'यह मैं हूँ' ऐसे दृढ़ आत्म श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्रश्न 2 – सम्यग्दर्शन कब होता है?

उत्तर – जब भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्म से भिन्न शुद्ध-आत्मा में 'यह मैं हूँ' ऐसा अपनापन स्थापित होता है।

प्रश्न 3 – सम्यग्दर्शन कब तक कायम रहता है?

उत्तर – 'यह मैं हूँ' ऐसा अपनापन जब तक शुद्ध-आत्मा में रहेगा, तब तक सम्यग्दर्शन कायम रहता है।

प्रश्न 4 – सम्यग्दर्शन में दर्शन शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है?

उत्तर – श्रद्धान के अर्थ में।

प्रश्न 5 – सम्यग्दर्शन में सम्यक् शब्द देने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर – सम्यग्दर्शन में सम्यक् पद विपरीत-अभिनिवेश (उल्टे अभिप्राय) के निषेध के लिए दिया गया है।

प्रश्न 6 – क्या निश्चय और व्यवहार सम्यग्दर्शन एक साथ हो सकते हैं?

उत्तर – हाँ, दीपक और प्रकाश की तरह दोनों सम्यग्दर्शन एक साथ ही होते हैं।

प्रश्न 7 – सम्यग्दर्शन कौन सी गति में किस जीव को हो सकता है?

उत्तर – सम्यग्दर्शन चारों गतियों में सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव को हो सकता है।

प्रश्न 8 – सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर – स्व-पर भेदविज्ञान पूर्वक आत्मानुभव से।

प्रश्न 9 – भेद-विज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर – देह-रागादि पर से भिन्न आत्मा को स्व जानना ही भेद-

विज्ञान है। यह भेद स्व और पर के बीच किया जाता है, अतः इसे स्व–पर भेदविज्ञान भी कहते हैं। यह आत्मानुभूतिपूर्वक होता है। इसके होने पर अतिन्द्रिय आनंद की कणिका उत्पन्न होती है।

प्रश्न 10 – सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर – सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति के लिए शुद्धात्मा के स्वरूप को द्रव्य–गुण–पर्याय से जानना चाहिए और सम्यग्दर्शन का ही पुरुषार्थ करना चाहिए; क्योंकि सम्यग्दर्शन होते ही सारा ज्ञान सम्यक् हो जाता है।

कैसा विरोधाभास है मुझमें?

पर में बहुत कुछ करना चाहता हूँ मैं,
पर में कुछ कर सकता नहीं मैं।
सब कुछ जानने की सामर्थ्य मुझमें,
पर अबतक अपने को ही नहीं जान पाया मैं।
कैसा विरोधाभास है मुझमें?
शुद्धात्मा हूँ मैं।
ऊर्ध्वगमन स्वाभाव मेरा,
पर नीचे रहती हूँ मैं।
सिद्ध समान स्वाभाव मेरा,
पर सिद्ध नहीं हूँ मैं।
कैसा विरोधाभास है मुझमें?
शुद्धात्मा हूँ मैं।
पंचभूत से बना नहीं मैं,
शुद्धज्ञान से बना हूँ मैं।
भूत नहीं मैं, आत्मा हूँ मैं।
शुद्धात्मा हूँ मैं।

–डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

3. आत्मानुभूति

प्रश्न 1 – आत्मानुभूति किसे कहते हैं?

उत्तर – जब मतिज्ञान व श्रुतज्ञान निर्विकल्प होकर आत्म सन्मुख होते हैं, तब तत्काल ही आत्मा शुद्धात्मा प्रतीति में आता है, अनुभूति में आता है अर्थात् ज्ञान–ज्ञान–ज्ञान आनंद के साथ अनुभूति में आता है। आत्मा की इसी अनुभूति को आत्मानुभूति कहते हैं।

प्रश्न 2 – आत्मानुभूति प्राप्त करने की विधि क्या है? और क्यों?

उत्तर – आत्मानुभूति के लिए सर्वप्रथम श्रुतज्ञान के माध्यम से देव- गुरु के सदुपदेश से, जिनवाणी के स्वाध्याय से, ज्ञानी धर्मात्मा के संबोधन से, तत्संबंधी अध्ययन से, मनन से, चिंतन से, ज्ञान स्वभावी आत्मा का विकल्पात्मक ज्ञान में सम्यक् निर्णय करना चाहिए; क्योंकि जब तक आत्मा का स्वरूप विकल्पात्मक ज्ञान में भली–भांति स्पष्ट नहीं होगा, तब तक आत्मानुभूति की प्रक्रिया संपन्न होना संभव नहीं है।

प्रश्न 3 – अनुभूति किसके लक्ष्य से उत्पन्न होती है?

उत्तर – अभेद आत्मा के।

प्रश्न 4 – भेद के लक्ष्य से क्या होता है?

उत्तर – विकल्पों की उत्पत्ति।

प्रश्न 5 – क्या अनुभव और अनुभूति पर्यायवाची हैं?

उत्तर – नहीं, क्योंकि अनुभूति के काल में अनुभव प्रकट होता है, पर अनुभूति के जाने के पश्चात् भी जब तक आत्मा में एकत्व रहता है, तब तक अनुभव कायम रहता है।

प्रश्न 6 – क्या अनुभूति के समाप्त होते ही सम्यग्दर्शन नष्ट हो जाता है?

उत्तर – नहीं, अनुभूति के काल में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है और जब तक अनुभव रहता है तब तक सम्यग्दर्शन रहता है।

प्रश्न 7 – सम्यग्दर्शन का निश्चित कारण कौन सी लब्धि है?

उत्तर – करणलब्धि।

4. लब्धि

प्रश्न 1 – लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर – जीव की शक्ति विशेष को लब्धि कहते हैं।

प्रश्न 2 – लब्धि कितने प्रकार की होती हैं? नाम बताइए।

उत्तर – लब्धि पाँच प्रकार की होती हैं – (१) क्षयोपशम (२) विशुद्धि (३) देशना (४) प्रायोग्य (५) करण।

प्रश्न 3 – जिसके होने पर तत्त्वविचार हो सके – ऐसे ज्ञानावरणादि कर्मों का क्षयोपशम होना कौन सी लब्धि है?

उत्तर – क्षयोपशमलब्धि। इस लब्धि के बिना जीवों को तत्त्व समझ में नहीं आता।

प्रश्न 4 – मोह के मंद उदय होने पर तत्त्वविचार करने में उद्यम होना कौन सी लब्धि है?

उत्तर – विशुद्धिलब्धि। इस लब्धि के बिना जीव तत्त्व समझने के लिए नहीं आता।

प्रश्न 5 – इस भव या पूर्व भव के संस्कारों द्वारा अथवा जिनोपदिष्ट तत्त्व को सुनकर, पढ़कर, चिंतवन करके सही तत्त्व निर्णय पर पहुँचना कौन सी लब्धि है?

उत्तर – देशनालब्धि। इस लब्धि से जीव को भेदविज्ञान में कारणभूत आत्मा का स्वरूप समझ में आता है।

प्रश्न 6 – देशनालब्धि द्वारा निर्णीत आत्मतत्त्व में वृद्धिंगत रूचि का परिपाक कौन सी लब्धि है?

उत्तर – प्रायोग्यलब्धि। इस लब्धि में पूर्व कर्मों की सत्ता और नवीन कर्म बंध कम होते जाते हैं।

प्रश्न 7 – बुद्धिपूर्वक तत्त्वविचार में उपयोग तद्रूप होकर लगने से परिणामों का निर्मल हो जाना कौन सी लब्धि है?

उत्तर – करणलब्धि। यह सम्यग्दर्शन का निश्चित कारण है। यह सहज होती है।

प्रश्न 8 – भव्य–अभव्य दोनों को कौन सी लब्धियाँ हो सकती हैं?

उत्तर – क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना और प्रायोग्य।

प्रश्न 9 – क्या करणलब्धि अभव्य को हो सकती है?

उत्तर – नहीं।

प्रश्न 10 – क्या स्वाध्याय करते–करते करणलब्धि हो सकती है?

उत्तर – नहीं; करणलब्धि ध्यान अवस्था में ही होती है।

प्रश्न 11 – करणलब्धि के कितने भेद हैं?

उत्तर – करणलब्धि के तीन भेद हैं– अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। तीनकालवर्ती करणलब्धि वाले जीवों के परिणामों की अपेक्षा ये तीन भेद हैं।

अध:करण

जिसमें पहले और पिछले समयवर्ती जीवों के परिणाम समान हों, उसे अध:करण कहते हैं। जैसे– किसी जीव के परिणाम पहले समय में अल्प विशुद्धता सहित हुए, पश्चात् समय में अनन्तगुनी विशुद्धता में बढ़ते गए तथा उसके द्वितीय–तृतीय आदि समयों में जैसे परिणाम हों, वैसे अन्य जीवों के प्रथम समय में ही हों और उनके उससे समय–समय अनन्तगुनी विशुद्धता से बढ़ते हैं अर्थात् इसकरण में बाद के समय वाला पहले समय वाले से आगे निकल सकता है।

अपूर्वकरण

जिसमें पहले और पिछले समयों के परिणाम समान न हों, अपूर्व ही हों, वह अपूर्वकरण हैं। जिन जीवों के करण का पहला समय ही हो, उनके परिणाम परस्पर समान भी होते हैं और अधिक–हीन विशुद्धता सहित भी होते हैं, परंतु आगे–पीछे के समयवालों के परिणाम अपूर्व ही होते हैं।

अनिवृत्तिकरण

जिसमें समान समयवृत्ति जीवों के परिणाम समान ही होते हैं तथा प्रथम समयवाले से द्वितीयादि समयवालों के परिणाम अनन्तगुनी विशुद्धता सहित ही होते हैं, उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं।

5. मिथ्यात्व

प्रश्न 1 – दुःखों का मूल कारण क्या है?

उत्तर – मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र।

प्रश्न 2 – मिथ्यादर्शन–ज्ञान–चारित्र कितने प्रकार के हैं? नाम बताइए।

उत्तर – मिथ्यादर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनों दो प्रकार के हैं – अगृहीत और गृहीत। अगृहीत मिथ्यादर्शन, गृहीत मिथ्यादर्शन। अगृहीत मिथ्याज्ञान, गृहीत मिथ्याज्ञान। अगृहीत मिथ्याचारित्र, गृहीत मिथ्याचारित्र।

प्रश्न 3 – अगृहीत मिथ्यादर्शन से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – सात तत्त्व संबंधी अनादिकालीन अश्रद्धा अगृहीत मिथ्यादर्शन है अर्थात् बिना सिखाए अनादि से ही पर पदार्थों में अहंबुद्धि, ममत्वबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि और भोक्तृत्वबुद्धि का होना ही अगृहीत मिथ्यादर्शन है। यह अनादि से ही हमारे साथ है।

प्रश्न 4 – अगृहीत मिथ्याज्ञान से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – सात तत्त्व संबंधी अनादिकालीन अज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है।

प्रश्न 5 – अगृहीत मिथ्याचारित्र से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – अनादिकालीन अगृहीत मिथ्यात्व सहित – पंचेन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति अगृहीत मिथ्याचारित्र है।

प्रश्न 6 – गृहीत मिथ्यादर्शन से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र के निमित्त से सात तत्त्वों के विषय में होने वाली भूल को पुष्ट करना गृहीत मिथ्यादर्शन है अथवा रागी–द्वेषी देवी–देवताओं में सच्चेदेव की मान्यता ही कुदेव में श्रद्धान रूप गृहीत मिथ्यादर्शन है।

जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान चारित्र रहित हैं, उनमें गुरु बुद्धि होना ही कुगुरु में श्रद्धान रूप गृहीत मिथ्यादर्शन है और जो शास्त्र वीतरागता के पोषक नहीं हैं, उनमें शास्त्र बुद्धि ही कुशास्त्र में श्रद्धान रूप गृहीत मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न 7 – गृहीत मिथ्याज्ञान से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – राग–द्वेष पोषक शास्त्रों को सही मानकर उनका अभ्यास करना गृहीत मिथ्याज्ञान है।

प्रश्न 8 – गृहीत मिथ्याचारित्र से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – प्रशंसादि के लोभ से धर्म के नाम पर शरीर को कष्ट देने वाली अनेक क्रियायें करना गृहीत मिथ्याचारित्र है।

प्रश्न 9 – गृहीत मिथ्यादर्शन–ज्ञान–चारित्र किस–किस गति में होता है?

उत्तर – केवल मनुष्य गति में।

आस्रव

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग– ये पाँच बंध के कारण हैं, आस्रवभाव हैं।

स्वामी की अपेक्षा से आस्रव दो प्रकार का होता है– सांपरायिक आस्रव और ईर्यापथ आस्रव।

कषाय सहित जीवों के होने वाले संसार के कारणभूत आस्रव को सांपरायिक आस्रव कहते हैं और कषाय रहित जीवों के स्थिति–अनुभाग बंध से रहित केवल योगों से होने वाले आस्रव को ईर्यापथ आस्रव कहते हैं।

6. गुणस्थान

प्रश्न 1 – गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – मोह और योग के निमित्त से जीव के श्रद्धा व चारित्र गुण की होने वाली तारतम्यरूप अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न 2 – जीव की मिथ्यात्व अवस्था से परमात्म अवस्था तक के क्रमिक विकास को किसके द्वारा समझाया गया है?

उत्तर – गुणस्थानों द्वारा समझाया गया है।

प्रश्न 3 – गुणस्थान कितने होते हैं? नाम बताइए।

उत्तर – गुणस्थान चौदह होते हैं – १) मिथ्यात्व २) सासादन ३) मिश्र ४) अविरतसम्यक्त्व ५) देशविरत ६) प्रमत्तसंयत ७) अप्रमतसंयत ८) अपूर्वकरण ९) अनिवृत्तिकरण १०) सूक्ष्मसांपराय ११) उपशांतमोह १२) क्षीणमोह १३) सयोगकेवली १४) अयोगकेवली।

प्रश्न 4 – जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता तब तक जीव कौन से गुणस्थान में होता है?

उत्तर – प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में।

प्रश्न 5 – असंज्ञी जीवों के कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर – केवल पहला गुणस्थान।

प्रश्न 6 – सिद्ध जीवों के कौन सा गुणस्थान होता है?

उत्तर – कोई सा नहीं, वे गुणस्थान रहित होते हैं।

प्रश्न 7 – किन गुणस्थान वालों का नियम से उपदेश नहीं होता है?

उत्तर – सातवें से बारहवें गुणस्थान वालों का नियम से उपदेश नहीं होता है।

प्रश्न 8 – किस गुणस्थान में इच्छारहित उपदेश होता है?

उत्तर – मात्र तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरहंतों के ही इच्छा रहित उपदेश होता है।

प्रश्न 9 – ग्यारहवें गुणस्थान से जीव नियम से किस गुणस्थान में जाता है?

उत्तर – दसवें गुणस्थान में ही जाता है।

प्रश्न 10 – बारहवें गुणस्थान से जीव नियम से किस गुणस्थान में जाता है?

उत्तर – तेरहवें।

प्रश्न 11 – तेरहवें गुणस्थान से जीव नियम से किस गुणस्थान में जाता है?

उत्तर – चौदहवें।

प्रश्न 12 – चौदहवें गुणस्थान से जीव नियम से क्या बनते हैं?

उत्तर – सिद्ध।

प्रश्न 13 – देवगति में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर – १ से ४ तक।

प्रश्न 14 – मनुष्यगति में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर – सभी गुणस्थान १ से १४ तक।

प्रश्न 15 – तिर्यंचगति में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर – १ से ५ तक।

प्रश्न 16 – नरकगति में कितने गुणस्थान होते हैं ?

उत्तर – १ से ४ तक।

प्रश्न 17 – भव्य जीवों के कितने गुणस्थान हो सकते हैं?

उत्तर – सभी चौदह गुणस्थान।

प्रश्न 18 – अभव्य जीवों के कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर – एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान। केवल पहला गुणस्थान।

7. कार्य परमात्मा और कारण परमात्मा

प्रश्न 1 – कार्य परमात्मा कौन है?

उत्तर – अरहंत, सिद्ध

प्रश्न 2 – हम पूजा किसकी करते हैं?

उत्तर – कार्य परमात्मा की।

प्रश्न 3 – कार्य परमात्मा के ध्यान से क्या होता है?

उत्तर – पूजा-भक्तिरूप शुभ विकल्पों की उत्पत्ति।

प्रश्न 4 – कारण परमात्मा कौन हैं?

उत्तर – एकमात्र शुद्धात्मा ही कारण परमात्मा है।

प्रश्न 5 – ध्यान किसका किया जाता है?

उत्तर – कारण परमात्मा का।

प्रश्न 6 – कारण परमात्मा के ध्यान से क्या होता है?

उत्तर – निर्विकल्प आत्मानुभूति।

प्रश्न 7 – निर्विकल्प आत्मानुभूति से क्या होता है?

उत्तर – रत्नत्रय की उत्पत्ति।

चाहे ज्ञानी सम्यग्दृष्टि चिंतन करें चाहे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि – सम्यक दर्शन के पूर्व होने वाली चिंतन प्रक्रिया दोनों में समान ही है। जैसा कि पंडित टोडरमल जी ने अपनी रहस्यपूर्ण चिट्ठी (पृष्ठ ३४२) में लिखा है- अब सविकल्प ही के द्वारा निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहते हैं:- वही सम्यक्त्वी कदाचित् स्वरूप ध्यान करने को उद्यमी होता है, वहां प्रथम भेदविज्ञान स्व-पर का करे; नोकर्म - द्रव्यकर्म -भावकर्म रहित केवल चैतन्य चमत्कार मात्र अपना स्वरूप जाने; पश्चात् पर का भी विचार छूट जाए, केवल स्वात्म विचार ही रहता है; वहाँ अनेक प्रकार निज स्वरूप में अहंबुद्धि धरता है । चिदानंद हूँ , शुद्ध हूँ , सिद्ध हूँ इत्यादिक विचार होने पर सहज ही आनंद तरंग उठती है, रोमांच हो आता है । संक्षेप में कहें तो इस गाथा में निर्विकल्प आत्मानुभूति के पूर्व होने वाली विकल्पात्मक स्थिति का चित्रण सहजता से कर दिया है।

8. अकर्त्तावाद

प्रश्न 1 – अकर्त्तावादी कौन कहलाते हैं?

उत्तर – एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता - हर्त्ता नहीं है - जो ऐसा मानने वाले हैं; वे अकर्त्तावादी कहलाते हैं अथवा जो भगवान को जगत का कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता नहीं मानते, वे अकर्त्तावादी कहलाते हैं।

प्रश्न 2 – कर्त्तावादी कौन कहलाते हैं?

उत्तर – जो ईश्वर को जगत का कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता मानते हैं।

प्रश्न 3 – जैनदर्शन कर्त्तावादी है या अकर्त्तावादी?

उत्तर – अकर्त्तावादी।

प्रश्न 4 – अकर्त्तावाद का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर – स्वकर्त्तावाद या सहजकर्त्तावाद

प्रश्न 5 – स्वकर्त्तावाद से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – प्रत्येक द्रव्य अपने परिणामों (पर्यायों) का कर्त्ता है।

प्रश्न 6 – स्वकर्त्तावाद और अकर्त्तावाद में क्या अन्तर है?

उत्तर – स्वकर्त्तावाद और अकर्त्तावाद-पर्यायवाची हैं। दोनों एक ही बात को दो भिन्न-भिन्न दृष्टियों से बताते हैं। इनमें अन्तर मात्र इतना है कि स्वकर्त्तावाद में स्व की दृष्टिकोण से कथन है और अकर्त्तावाद में पर की दृष्टिकोण से कथन किया गया है।

प्रश्न 7 – 'मैं दूसरों को सुखी-दुखी कर सकता हूँ' - ऐसा माननेवाले कौन हैं?

उत्तर – कर्त्तावादी।

प्रश्न 8 – क्या भगवान किसी को सुखी-दुःखी कर सकते हैं?

उत्तर – नहीं, भगवान किसी को सुखी-दुःखी नहीं कर सकते; क्योंकि एक द्रव्य दूसरे का कर्त्ता नहीं है और पर्यायों में फेर बदल संभव नहीं है।

प्रश्न 9 – क्या आत्मा अपनी पर्यायों का अकर्त्ता है?

उत्तर – नहीं, आत्मा अपनी पर्यायों का ही कर्त्ता है।

प्रश्न 10 – क्या सभी द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायों के कर्त्ता हैं?

उत्तर – हाँ, यद्यपि सभी द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायों के कर्त्ता हैं तथापि फेरफार कर्त्ता नहीं हैं।

प्रश्न 11 – क्या आत्मा शरीर का कर्त्ता है?

उत्तर – नहीं।

प्रश्न 12 – शरीर का कर्त्ता कौन है और क्यों?

उत्तर – शरीर का कर्त्ता पुद्‌गल है, क्योंकि शरीर पुद्‌गल से बना है।

प्रश्न 13 – क्या वस्तु (द्रव्य) का परिणमन भगवान के ज्ञान के आधीन है? अथवा क्या जो भगवान ने जान लिया, वस्तु को वैसे ही परिणमित होना पड़ेगा?

उत्तर – नहीं, भगवान वस्तु के क्रमनियमित परिणमन को मात्र जानते हैं, करते नहीं।

प्रश्न 14 – यदि भगवान कुछ नहीं करते, तो द्रव्यों में परिवर्तन कैसे होता है?

उत्तर – द्रव्यत्व गुण के कारण प्रत्येक द्रव्य अपने परिवर्तन का कर्त्ता स्वयं है। परिवर्तन द्रव्य का स्वभाव है। उसे अपने परिणमन में पर द्रव्य की रंचमात्र आवश्यता नहीं।

प्रश्न 15 – नित्य परिणमन (परिवर्तन) प्रत्येक द्रव्य का सहज स्वभाव है या विभाव?

उत्तर – स्वभाव।

प्रश्न 16 – स्वभाव पर निरपेक्ष होता है या सापेक्ष।

उत्तर – स्वभाव निरपेक्ष (अपेक्षा रहित) ही होता है।

प्रश्न 17 – द्रव्य में यह परिणमन नियमित क्रम से होता है या अनियमित?

उत्तर – द्रव्य में परिणमन नियमित क्रम से ही होता है।

9. क्रमबद्धपर्याय

प्रश्न 1 – क्रमबद्धपर्याय से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – जिस द्रव्य की जो पर्याय, जिस काल में, जिस निमित्त और जिस पुरुषार्थपूर्वक, जैसी होनी है; उस द्रव्य की वह पर्याय, उसी काल में, उसी निमित्त और उसी पुरुषार्थ पूर्वक, वैसी ही होती है अर्थात् जगत में जो भी परिणमन हो रहा है, वह सब निश्चितक्रम में व्यवस्थित रूप से हो रहा है। यही क्रमबद्धपर्याय है।

प्रश्न 2 – क्रमबद्धपर्याय का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर – क्रमनियमित पर्याय।

प्रश्न 3 – क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि में सबसे प्रबल हेतु क्या है?

उत्तर – सर्वज्ञता।

प्रश्न 4 – क्रमबद्धपर्याय में वस्तु की अनन्त स्वतंत्रता की घोषणा है या परतंत्रता की और क्यों? सतर्क उत्तर दीजिये।

उत्तर – क्रमबद्धपर्याय में वस्तु की अनन्त स्वतंत्रता की घोषणा है; क्योंकि इससे हमें यह पता चलता है कि हमारा सुख-दुःख, जीवन-मरण, भला-बुरा सब कुछ निश्चित है, उसमें अन्य किसी का कोई भी हस्तक्षेप नहीं है।

प्रश्न 5 – क्रमबद्धपर्याय के जानने से क्या लाभ है?

उत्तर – मैं किसी का और कोई मेरा कुछ अच्छा-बुरा नहीं कर सकता है। मैं स्वयं भी अपनी क्रमनियमितपर्यायों में फेरबदल नहीं कर सकता हूँ - यह समझ में आ जाता है, जिससे जीव की आकुलता समाप्त हो जाती है।

प्रश्न 6 – क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि किस अनुयोग के शास्त्रों से हो सकती है?

उत्तर – क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि चारों अनुयोग के शास्त्रों से हो सकती है।

10. पाँच समवाय

प्रश्न 1 – पाँच समवाय कौन-कौन से हैं?

उत्तर – १) स्वभाव २) काललब्धि ३) भवितव्य ४) पुरुषार्थ ५) निमित्त

प्रश्न 2 – स्वभाव किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस वस्तु में जिस रूप परिणमित होने की त्रिकाल योग्यता है, उसे स्वभाव कहते हैं। जैसे – अग्नि में उष्णता और जीव में ज्ञान-दर्शन।

प्रश्न 3 – काललब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस काल में कार्य होता है, उसे ही काललब्धि कहते हैं। यह पर्यायगत योग्यता बताता है।

प्रश्न 4 – भवितव्य किसे कहते हैं?

उत्तर – जो कार्य हुआ उसे ही भवितव्य (होनहार) कहते हैं।

प्रश्न 5 – पुरुषार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु में जिस विधि से, जो प्रक्रिया सम्पन्न हुई उसे पुरूषार्थ कहते हैं।

प्रश्न 6 – निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर – कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आ सके उसे निमित्त कहते हैं।

प्रश्न 7 – काल को छोड़कर शेष चार समवायों को किस नाम से कहा जाता है?

उत्तर – अकाल।

प्रश्न 8 – कार्य कब होता है?

उत्तर – पाँच समवायों के होने पर।

11. कार्य-कारण

प्रश्न 1 – कार्य किसे कहते हैं?

उत्तर – पदार्थों के परिणमन को कार्य कहते हैं। कार्य हमेशा कारण पूर्वक ही होता है।

प्रश्न 2 – कार्य के पर्यायवाची नाम बताइए?

उत्तर – पर्याय, परिणाम, परिणति, दशा, हालत, अवस्था आदि।

प्रश्न 3 – कारण किसे कहते हैं?

उत्तर – कार्य की उत्पादक सामग्री को कारण कहते हैं।

प्रश्न 4 – कारण कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर – दो-उपादान कारण और निमित्त कारण।

प्रश्न 5 – उपादान कारण की अपेक्षा कार्य को क्या कहते हैं?

उत्तर – उपादेय।

प्रश्न 6 – निमित्त की अपेक्षा कार्य को क्या कहते हैं?

उत्तर – नैमित्तिक।

प्रश्न 7 – कारण-कार्य संबंध को किन दो नामों से कहा जा सकता है?

उत्तर – उपादान-उपादेय, निमित्त-नैमित्तिक।

प्रत्येक कार्य नियम से उपादेय भी होता है और नैमित्तिक भी। उपादान की अपेक्षा कार्य उपादेय है। जैसे- मिट्टी और घड़ा में उपादान-उपादेय संबंध है और निमित्त की अपेक्षा कार्य नैमित्तिक है। जैसे- कुम्हार और घड़े में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

12. उपादान कारण

प्रश्न 1 – उपादान कारण किसे कहते हैं?

उत्तर – जो स्वयं कार्य रूप परिणमित हो, उसे उपादान कारण कहते हैं।

प्रश्न 2 – उपादान कारण कितने प्रकार का होता है?

उत्तर – उपादान कारण दो प्रकार का होता है–त्रिकाली उपादान, क्षणिक उपादान।

प्रश्न 3 – क्षणिक उपादान कारण कितने प्रकार का होता है?

उत्तर – क्षणिक उपादान कारण दो प्रकार का होता है – (क) अनन्तरपूर्वक्षणवर्ती पर्याय के व्ययरूप (ख) तत्समय की योग्यता रूप।

प्रश्न 4 – कार्य का नियामक कारण कौन है?

उत्तर – क्षणिक उपादान कारण।

प्रश्न 5 – क्षणिक उपादान कारण का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर – समर्थ उपादान कारण।

प्रश्न 6 – त्रिकाली उपादान कारण किसे कहते हैं?

उत्तर – जो द्रव्य या गुण स्वयं कार्यरूप परिणमित हो, उस द्रव्य या गुण को उस कार्य का त्रिकाली उपादान कहते हैं। जैसे– घट रूप कार्य का त्रिकाली उपादान मिट्टी है।

प्रश्न 7 – क्षणिक उपादान कारण कितने भेद हैं?

उत्तर – क्षणिक उपादान कारण के दो भेद हैं– १. अनन्तरपूर्वक्षणवर्ती पर्याय के व्ययरूप क्षणिक उपादान कारण २. तत्समय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान कारण। इन्हें संक्षेप में अनन्तरपूर्वक्षणवर्ती पर्याय और तत्समय की योग्यता भी कहते हैं।

13. निमित्त कारण

प्रश्न 1 – निमित्त कारण किसे कहते हैं?

उत्तर – जो स्वयं कार्य रूप परिणमित न हो, पर कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आता हो, उसे निमित्त कारण कहते हैं।

प्रश्न 2 – निमित्तकारण कितने प्रकार का होता है?

उत्तर – दो–उदासीन और प्रेरक।

प्रश्न 3 – उदासीन निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर – इच्छाशक्ति रहित निष्क्रिय द्रव्यों को उदासीन निमित्त कहते हैं। जैसे – धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य।

प्रश्न 4 – प्रेरक निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर – इच्छावान और क्रियावान द्रव्यों को प्रेरक निमित्त कहते हैं। जैसे – जीव और पुद्गल द्रव्य।

अनन्तरपूर्णक्षणवर्तीपर्याय

द्रव्य और गुणों में जो पर्यायों का प्रवाहक्रम अनादि–अनन्त चला करता है, उस प्रवाहक्रम में अनन्तर–पूर्णक्षणवर्तीपर्याय से युक्त द्रव्य क्षणिक उपादान कारण है और अनन्तर–उत्तरक्षणवर्तीपर्याय से युक्त द्रव्य कार्य है।

तत्समय की योग्यता

उस पर्याय की उसी समय होने रूप योग्यता भी क्षणिक उपादान कारण हैं और वह पर्याय कार्य है।

इसप्रकार अनन्तरपूर्वक्षणवर्तीपर्याय का व्यय और तत्समय की योग्यता (उस समय उस पर्याय के होने की योग्यता) ही समर्थ उपादान कारण हैं। इसीलिए क्षणिक उपादान कारण को 'समर्थ उपादान कारण' भी कहते हैं।

14. वस्तु

प्रश्न 1 – वस्तु किसे कहते हैं?

उत्तर – जिसमें द्रव्य, गुण, पर्याय और प्रदेश शामिल हों, उसे वस्तु कहते हैं अथवा जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ये चार चीजें पाई जावें, उसे वस्तु कहते हैं।

प्रश्न 2 – वस्तु की आठ विशेषताएँ कौन–कौन सी हैं।

उत्तर – वस्तु द्रव्य की अपेक्षा सामान्य–विशेष है। वस्तु क्षेत्र की अपेक्षा भेद–अभेद है। वस्तु काल की अपेक्षा नित्य–अनित्य है। वस्तु भाव की अपेक्षा एक–अनेक है।

प्रश्न 3 – वस्तु का स्वरूप कैसा है?

उत्तर – अनेकान्त स्वरूप।

अनेकान्त शब्द 'अनेक' और 'अन्त' दो शब्दों से मिलकर बना है। अनेक का अर्थ होता है– एक से अधिक। एक से अधिक दो भी हो सकते हैं और अनन्त भी। दो और अनन्त के बीच में अनेक अर्थ सम्भव हैं तथा अन्त का अर्थ है धर्म अर्थात् गुण। प्रत्येक वस्तु में अनन्त गुण विद्यमान हैं, अत: जहाँ अनेक का अर्थ अनन्त होगा वहाँ अन्त का अर्थ गुण लेना चाहिये। इस व्याख्या के अनुसार अर्थ होगा – अनन्तगुणात्मक वस्तु ही अनेकान्त है। किन्तु जहाँ अनेक का अर्थ दो लिया जायेगा वहाँ अन्त का अर्थ धर्म होगा। तब यह अर्थ होगा– परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले दो धर्मों का एक ही वस्तु में होना अनेकान्त है।

15. अनेकान्त और स्याद्वाद

प्रश्न 1 – अनेकान्त से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले दो धर्मों का एक ही वस्तु में होना अनेकान्त है।

प्रश्न 2 – धर्म से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – जो शक्तियाँ सापेक्ष होती हैं, पर परस्पर विरूद्ध प्रतीत होती हैं; उन्हें धर्म कहते हैं।

प्रश्न 3 – प्रत्येक वस्तु में कितने धर्म होते हैं?

उत्तर – प्रत्येक वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं।

प्रश्न 4 – क्या वस्तु के अनन्त धर्मों को एक साथ कहा जा सकता है?

उत्तर – नहीं, वस्तु के अनन्त धर्मों को एकसाथ नहीं कहा जा सकता है।

प्रश्न 5 – क्या वस्तु के अनन्त धर्मों को एकसाथ जाना जा सकता है?

उत्तर – हाँ, वस्तु के अनन्त धर्मों को एकसाथ जाना जा सकता है।

प्रश्न 6 – अनन्त धर्मात्मक वस्तु को कैसे जाना जा सकता है?

उत्तर – प्रमाण द्वारा।

प्रश्न 7 – स्याद्वाद किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु के अनेकान्त स्वरूप को समझाने वाली सापेक्ष कथनपद्धति को स्याद्वाद कहते हैं।

प्रश्न 8 – स्याद्वाद में स्यात् पद किस अर्थ का वाचक होता है?

उत्तर – निश्चित अपेक्षा का।

प्रश्न 9 – क्या स्यात् पद अविवक्षित धर्मों का अभाव करता है?

उत्तर – स्यात् पद अविवक्षित धर्मों का अभाव नहीं करता है।

प्रश्न 10 – स्यात् पद अविवक्षित धर्मों का निषेध नहीं करता है, तो क्या करता है?

उत्तर – स्यात् – पद अविवक्षित धर्मों को गौण करता है।

प्रश्न 11 – स्याद्वाद शैली में 'भी' शब्द किस की सत्ता का सूचक है?

उत्तर – अनुक्त की सत्ता का।

प्रश्न 12 – स्याद्वाद शैली में 'ही' शब्द किसकी सत्ता का सूचक है?

उत्तर – दृढ़ता का।

धर्म	गुण
1. द्रव्य की जो शक्तियाँ परस्पर विरुद्ध प्रतीत होती हैं या सापेक्ष होती हैं, उन्हें धर्म कहते हैं।	1. द्रव्य की जो शक्तियाँ विरोधाभास रहित हैं, निरपेक्ष हैं, उन्हें गुण कहते हैं।
2. जैसे-नित्यता-अनित्यता, भिन्नता-अभिन्नता, सत्-असत्, द्वैत-अद्वैत, एकता-अनेकता आदि।	2. जैसे-आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख आदि और पुद्गल के रूप, रस, गंध आदि।
3. धर्म जोड़े से ही होते हैं, अत: सापेक्ष ही होते हैं।	3. गुण जोड़े से नहीं होते हैं, अत: निरपेक्ष ही होते हैं।

16. प्रमाण

प्रश्न 1 – प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर – अपने और पर पदार्थों के स्वरूप का संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहित निर्णय करने वाले सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

प्रश्न 2 – श्रुतज्ञान नय हैं या प्रमाण?

उत्तर – प्रमाण।

प्रश्न 3 – नय वाक्यों में स्यात् शब्द लगाकर बोलने को क्या कहते हैं?

उत्तर – प्रमाण।

प्रश्न 4 – प्रमाण का विषय क्या है?

उत्तर – अनेकान्तात्मक वस्तुयें प्रमाण का विषय हैं।

प्रश्न 5 – पदार्थ के समग्र स्वभाव को एक साथ किसके द्वारा जाना जाता है?

उत्तर – प्रमाण।

प्रश्न 6 – प्रमाण अंशग्राही होता है या सर्वग्राही।

उत्तर – सर्वग्राही।

प्रश्न 7 – क्या प्रमाण पद्धति में वस्तु में मुख्यता-गौणता होती है?

उत्तर – नहीं।

प्रश्न 8 – प्रमाणाभास किसे कहते हैं?

उत्तर – जिससे पदार्थों का निर्णय नहीं होता ऐसे संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय सहित मिथ्याज्ञान को प्रमाणाभास कहते हैं।

प्रश्न 9 – संशय किसे कहते हैं?

उत्तर – परस्पर विरुद्ध अनेक पक्षों का अवगाहन करनेवाले अनिश्चितज्ञान को संशय कहते हैं। जैसे – यह रस्सी है या सांप।

प्रश्न 10 – विपर्यय किसे कहते हैं?

उत्तर – विपरीत एक पक्ष का निर्णय करनेवाले ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। जैसे – रस्सी को सांप समझना।

प्रश्न 11 – अनध्यवसाय किसे कहते हैं?

उत्तर – अनिश्चित, सामान्य, विकल्प (इच्छा) रहित ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं। जैसे – चलते समय पैर में स्पर्श हुए पत्थर में 'कुछ है' ऐसा ज्ञान।

प्रश्न 12 – प्रमाणाभास समझने की आवयश्यकता क्यों है? अथवा प्रमाणाभास समझने से लाभ क्या है? अथवा प्रमाणाभास समझने का क्या महत्व है?

उत्तर – प्रमाणाभास से पदार्थों का सही निर्णय न होने से हमारे प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है। अत: गलत रास्ते पर चलने (भटकने) से बचने के लिए प्रमाणाभास को भी समझने की आवश्यकता है।

प्रश्न 13 – प्रमाण की प्रमाणता कैसे होती है? भेद सहित बताइये।

उत्तर – प्रमाण की प्रमाणता अभ्यास दशा में अपने आप और अनभ्यास दशा में पर से होती है। इसप्रकार प्रमाणता दो प्रकार की होती है – स्वत: प्रमाणता और परत: प्रमाणता।

प्रश्न 14 – प्रमाणता किसे कहते हैं?

उत्तर – यर्थाथ स्वरूप को प्रमाणता कहते हैं।

प्रश्न 15 – अभ्यास दशा किसे कहते हैं?

उत्तर – पूर्व में जानी हुई परिचित अवस्था को अभ्यास दशा कहते हैं।

प्रश्न 16 – अनभ्यास दशा किसे कहते हैं?

उत्तर – अपरिचित दशा को अनभ्यास दशा कहते हैं।

प्रश्न 17 – क्या केवली आत्मा को मुख्य रूप से जानते हैं और पर को गौण रूप से?

उत्तर – केवलज्ञान में मुख्य-गौण की व्यवस्था नहीं है; क्योंकि केवलज्ञान प्रमाणज्ञान है और प्रमाणज्ञान में सभी पक्ष मुख्य ही रहते हैं।

17. नय

प्रश्न 1 – नय किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु के एक अंश को ग्रहण करन को नय कहते हैं।

प्रश्न 2 – नय अंशों को ग्रहण करने वाले क्यों होते हैं?

उत्तर – नयों की प्रवृत्ति वस्तु के एक देश में होने से नय अंशों को ग्रहण करने वाले होते हैं।

प्रश्न 3 – नयों का कथन सापेक्ष होता है या निरपेक्ष? और क्यों?

उत्तर – अंशों को ग्रहण करने वाला होने के कारण नयों का कथन सापेक्ष ही होता है।

प्रश्न 4 – नयों का स्वरूप समझना आवश्यक क्यों है?

अ) जिनागम को समझने के लिए

ब) आत्मा के सही ज्ञान के लिए

क) वस्तु स्वरूप के सच्चे ज्ञान के लिए

ड) मिथ्यात्व के नाश के लिए

ई) आत्मानुभव के लिए

प्रश्न 5 – नय ज्ञानात्मक होते हैं या वचनात्मक?

उत्तर – नय ज्ञानात्मक भी होते हैं और वचनात्मक भी। जहाँ ज्ञानात्मक नय अपेक्षित हों, वहाँ ज्ञाता के अभिप्राय को और जहाँ वचनात्मक नय अपेक्षित हों वहाँ वक्ता के अभिप्राय को नय कहा जाता है।

प्रश्न 6 – नय कितने प्रकार के होते हैं? नाम बताओ।

उत्तर – नय अनन्त हो सकते हैं। मुख्य नय दो प्रकार के होते हैं- अध्यात्म के नय और आगम के नय।

18. अध्यात्म के नय

प्रश्न 1 – अध्यात्म के नय किसे कहते हैं?

उत्तर – जिनमें आत्मद्रव्य की मुख्यता से कथन होता है, उन्हें अध्यात्म के नय कहते हैं। इसमें आत्मा का परिचय देकर हेय-उपादेय बुद्धि जाग्रत कराई जाती है।

प्रश्न 2 – अध्यात्म के नय कितने हैं? नाम बताओ।

उत्तर – अध्यात्म के नय दो हैं – निश्चय और व्यवहार।

प्रश्न 3 – निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर – सच्चे निरूपण को निश्चय नय कहते हैं। यह नय दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में प्रयोजनवश स्थापित की गई एकता का खण्डन करता है। जैसे – जीव व देह कभी एक नहीं हो सकते और यह नय एक अखण्ड वस्तु में भेदों का निषेध कर अखण्डता की स्थापना भी करता है। जैसे – जीव ज्ञान, दर्शन, सुख आदि भेद से भिन्न अखण्ड द्रव्य है।

प्रश्न 4 – व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर – उपचरित निरूपण को व्यवहार नय कहते हैं। यह नय दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में अभेद स्थापित करता है। जैसे – जीव व देह एक ही है और यह नय एक अखण्ड वस्तु में भेद भी करता है। जैसे – जीव ज्ञानवाला है, दर्शनवाला है आदि।

प्रश्न 5 – क्या केवली निश्चय से आत्मा को जानते हैं और व्यवहार से पर को?

उत्तर – नहीं, केवली के नय नहीं होते, वे प्रतिसमय स्व और पर – दोनों को एक साथ जानते हैं, जान रहे हैं।

प्रश्न 6 – केवली भगवान का स्व को जानना क्या कहलाता है?

उत्तर – निश्चय

प्रश्न 7 – केवली भगवान का पर को जानना क्या कहलाता है?

उत्तर – व्यवहार

प्रश्न 8 – केवली का स्व को जानना निश्चय क्यों कहलाता है?

उत्तर – वे आत्मा को 'यह मैं हूँ' ऐसा जानते हैं, इसलिए स्व को जानना निश्चय कहलाता है।

प्रश्न 9 – केवली के पर को जानने को व्यवहार क्यों कहते हैं?

उत्तर – पर पदार्थ 'मुझ से भिन्न हैं – ये मैं नहीं हूँ' – ऐसा जानने के कारण केवली के पर को जानने को व्यवहार कहते हैं।

प्रश्न 10 – निश्चय का कार्य क्या है?

उत्तर – पर से भेद कर स्व में अभेद करना। व्यवहार के निषेध के साथ-साथ स्वयं के पक्ष का भी निषेध कर जीव को नयातीत आत्मा में स्थापित करना निश्चयनय का कार्य है।

प्रश्न 11 – निश्चय और व्यवहार किस अपेक्षा विरोधी हैं?

उत्तर – विषयगत विरोध के कारण दोनों नय एक दूसरे के विरोधी हैं। व्यवहार का काम भेद करके समझाना है और संयोग का ज्ञान कराना है; अत: वह अभेद-अखण्ड वस्तु में भेद करके समझाता है और संयोगों का ज्ञान कराता है। निश्चय का काम व्यवहार का निषेध करना है।

प्रश्न 12 – क्या निश्चय-व्यवहार एक-दूसरे के पूरक हैं?

उत्तर – हाँ हैं। दोनों नय एक-दूसरे के पूरक हैं; क्योंकि वस्तु के परस्पर विरोधी धर्मों में से एक का कथन निश्चय और दूसरे का कथन व्यवहार करता है। अत: वस्तु के संपूर्ण प्रकाशन और प्रतिपादन के लिए दोनों नय आवश्यक हैं।

प्रश्न 13 – निश्चयनय को भूतार्थ क्यों कहते हैं?

उत्तर – निश्चयनय के आश्रय से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है, मुक्ति की प्राप्ति होती है; इसी कारण उसे भूतार्थ कहते हैं।

19. आगम के नय

प्रश्न 1 – आगम के नय किसे कहते हैं?

उत्तर – जिनमें छह द्रव्यों की मुख्यता से कथन होता है, उन्हें आगम के नय कहते हैं।

प्रश्न 2 – आगम के नय कितने हैं? नाम बताओ।

उत्तर – आगम के नय दो हैं – द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक।

प्रश्न 3 – द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु के सामान्य, एक, नित्य, अभेद अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान के अंश को द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

प्रश्न 4 – पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु के विशेष अनेक, अनित्य, भेद अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान के अंश को पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

प्रश्न 5 – द्रव्यार्थिक नय का विषय क्या है?

उत्तर – सामान्य, अभेद, नित्य, एक।

प्रश्न 6 – द्रव्यार्थिक नय के विषय को क्या कहते हैं?

उत्तर – द्रव्य।

प्रश्न 7 – पर्यायार्थिक नय का विषय क्या हैं?

उत्तर – विशेष, भेद, अनित्य, अनेक।

प्रश्न 8 – पर्यायार्थिक नय के विषय को क्या कहते हैं?

उत्तर – पर्याय।

प्रश्न 9 – क्या द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नय एक ही समय में घट सकते हैं?

उत्तर – हाँ, दोनों नय एक ही समय में घट सकते हैं।

20. लेश्या

प्रश्न 1 – लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर – जिसके द्वारा जीव अपने आपको कर्म से लिप्त करता है, उसे लेश्या कहते हैं।

प्रश्न 2 – लेश्या कितने प्रकार की होती है? नाम बताओ।

उत्तर – लेश्या दो प्रकार की होती है- भाव लेश्या और द्रव्य लेश्या।

प्रश्न 3 – द्रव्य और भाव रूप कौन सी लेश्या होतीं हैं?

उत्तर – छहों लेश्या द्रव्य और भाव रूप होतीं है।

प्रश्न 4 – भाव लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर – कषाय से अनुरंजित जीव की मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को भाव लेश्या कहते हैं।

प्रश्न 5 – जीवों के परिणामों के अनुसार कौन सी लेश्या बदलती हैं?

उत्तर – भाव लेश्या।

प्रश्न 6 – द्रव्य लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्ण नामकर्म के उदय से होने वाले शरीर के रंग को द्रव्य लेश्या कहते हैं।

प्रश्न 7 – द्रव्य लेश्या कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर – द्रव्य लेश्या छः प्रकार की होती है- कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल।

प्रश्न 8 – शुभ लेश्या कौन सी हैं?

उत्तर – पीत, पद्म, शुक्ल।

प्रश्न 9 – अशुभ लेश्या कौन सी हैं?

उत्तर – कृष्ण, नील, कापोत।

प्रश्न 10 – मंद कषाय होने पर कौन सी लेश्या होतीं हैं?

उत्तर – पीत (मंद), पद्म (मंदतर), शुक्ल (मंदतम)।

प्रश्न 11 – तीव्र कषाय होने पर कौन सी लेश्या होतीं हैं?

उत्तर – कृष्ण (तीव्रतम), नील (तीव्रतर), कापोत (तीव्र)।

प्रश्न 12 – आयुपर्यन्त कौन सी लेश्या रहती है?

उत्तर – द्रव्यलेश्या।

प्रश्न 13 – सयोगकेवली को कौन सी लेश्या नहीं होती?

उत्तर – भाव लेश्या।

प्रश्न 14 – अयोगकेवली और सिद्ध को कौन सी लेश्या नहीं होती?

उत्तर – दोनों लेश्या नहीं होती, वे लेश्या रहित होते हैं।

लेश्या	लक्षण, विचार एवं वचन
कृष्ण	तीव्र क्रोधी, जैसे- वृक्ष को मूल से उखाड़कर फल खाऊँगा।
नील	तीव्र मानी, मायावी, विषयलोलुपी; जैसे- वृक्ष को स्कंध से काटकर फल खाऊँगा।
कापोत	परनिंदक, स्वप्रशंसक, कार्य-अकार्य नहीं गिने; जैसे- वृक्ष की बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटकर फल खाऊँगा।
पीत	समदर्शी, मन-वचन-काय से कोमल, कार्य-अकार्य जाने; जैसे- वृक्ष की छोटी-छोटी शाखाओं को काटकर फल खाऊँगा।
पद्म	भद्र परिणामी, सुकार्य स्वभावी; जैसे- वृक्ष के फलों को तोड़कर खाऊँगा।
शुक्ल	पक्षपात और राग-द्वेषरहित; जैसे- वृक्ष से स्वयं टूटे फलों को खाऊँगा।

21. समुद्घात

प्रश्न 1 – समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – मूल शरीर को छोड़े बिना आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलकर फिर शरीर में समाने को समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 2 – समुद्घात कितने प्रकार के होते हैं? नाम बताइए।

उत्तर – समुद्घात सात प्रकार के होते हैं - (१) वेदना (२) कषाय ३) वैक्रियक (४) मारणान्तिक (५) तैजस (६) आहारक और (७) केवली समुद्घात।

प्रश्न 3 – वेदना समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – तीव्र पीड़ा के अनुभव से आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलने को वेदना समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 4 – कषाय समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – कषाय की तीव्रता से जीव प्रदेशों का अपने शरीर से तिगुने प्रमाण फैलने को कषाय समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 5 – वैक्रियक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – विक्रिया शरीर वाले देव और नारकी जीवों का अपने शरीर को छोटा-बड़ा या अन्य शरीर रूप करने के लिए आत्मा के प्रदेशों का बाहर जाने को वैक्रियक समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 6 – मरणांतिक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – मरण के अंतर्मुहूर्त पूर्व नवीन पर्याय धारण करने के क्षेत्र पर्यंत आत्म प्रदेशों का बाहर निकल कर नवीन भव के क्षेत्र (स्थान) को स्पर्श करने को मरणांतिक समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 7 – जिनके आयुबंध न हुआ हो क्या उन्हें मरणांतिक समुद्घात हो सकता है?

उत्तर – नहीं।

प्रश्न 8 – तैजस समुद्घात किसे कहते हैं।

उत्तर – जीवों के अनुग्रह और विनाश के लिए मुनिराज के कंधों

से आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने को तैजस समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 9 – तैजस समुद्घात कितने प्रकार का होता है? नाम बताईये।

उत्तर – तैजस समुद्घात दो प्रकार का होता है – शुभ तैजस और अशुभ तैजस।

प्रश्न 10 – शुभ तैजस समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – जगत को दुर्भिक्ष आदि कारणों से दुःखी देखकर जिनको दया उत्पन्न हुई है, ऐसे संयमी मुनिराज के मूल शरीर को न छोड़कर धवल रंग का पुरुषाकार पुतला दायें कंधे से निकलकर दुर्भिक्ष आदि दुःखदायी कारणों को दूरकर वापिस मुनिराज के शरीर में ही आकर समा जाता है। इसे ही शुभ तैजस समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 11 – अशुभ तैजस समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – अनिष्ट करने वाले कारण को देखकर जिनको क्रोध उत्पन्न हुआ है, ऐसे संयमी मुनिराज के मूल शरीर को न छोड़कर लाल रंग का बिलावाकार पुतला बायें कंधे से निकलकर अनिष्टकारक पदार्थ को भस्मकर वापिस मुनिराज के शरीर में ही समाकर (अधिक देर ठहर जाय तो) मुनिराज को भी भस्म कर देता है। इसे ही अशुभ तैजस समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 12 – आहारक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – परम ऋद्धिधारी मुनिराजों की शंका के समाधान, तीर्थों की वंदना और हिंसा से बचने के लिए मस्तक में से आहारक शरीर के निकलने को आहारक समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 13 – केवली समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – जब सयोग केवली की आयुकर्म की स्थिति कम हो और शेष तीन अघातिया कर्मों की स्थिति अधिक हो तब अन्य कर्मों को आयुकर्म की स्थिति के बराबर करने हेतु आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने को केवली समुद्घात कहते हैं।

22. जीव के असाधारण भाव

प्रश्न 1 – असाधारण भाव से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – जो जीव के अतिरिक्त अन्य किसी द्रव्य में नहीं पाए जाते, मात्र जीव में ही पाए जाते हैं, वे असाधारण भाव कहलाते हैं।

प्रश्न 2 – जीव के असाधारण भाव कितने हैं? नाम बताइए।

उत्तर – जीव के पाँच असाधारण भाव हैं – पारिणामिक, औदयिक औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक।

प्रश्न 3 – पारिणामिक भाव से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – ध्रुव सदा एक रूप रहने वाले भाव पारिणामिक भाव हैं। इनमें कर्म का सद्भाव या अभाव कुछ भी निमित्त नहीं होता।

प्रश्न 4 – औदयिकभाव से क्या तात्पर्य है।

उत्तर – कर्मों के निमित्त से आत्मा में होने वाले विकारीभाव ही औदयिकभाव हैं। इसमें कर्मों का उदय होता है।

प्रश्न 5 – औपशमिकभाव से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – आत्मा के पुरुषार्थ द्वारा कर्मों के उपशम से होने वाले सम्यक्त्व और चारित्र औपशमिक भाव हैं।

प्रश्न 6 – क्षायिक भाव से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – आत्मा के पुरुषार्थ द्वारा किसी गुण की शुद्ध अवस्था का प्रगट होना क्षायिक भाव है। इसमें कर्मों का क्षय होता है।

प्रश्न 7 – क्षायोपशमिकभाव से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – आत्मा के पुरुषार्थ द्वारा श्रद्धा और चारित्र की आंशिक शुद्ध अवस्था क्षायोपशमिकभाव है। इसमें कर्मों का आंशिक क्षय और आंशिक उपशम होता है।

प्रश्न 8 – कर्मों के उपशम से कौन सा भाव होता है?

उत्तर – औपशमिक भाव।

प्रश्न 9 – कर्मों के क्षयोपशम से कौन सा भाव होता है?

उत्तर – क्षायोपशमिक भाव।

प्रश्न 10 – कर्मों के उदय से कौन सा भाव होता है?

उत्तर – औदयिक भाव।

प्रश्न 11 – कर्मों के क्षय से कौन सा भाव होता है?

उत्तर – क्षायिक भाव।

प्रश्न 12 – कर्म निरपेक्ष कौन सा भाव है?

उत्तर – पारिणामिक भाव।

प्रश्न 13 – क्या जीव कर्म के कारण विकार करता है?

उत्तर – जीव स्वयं की भूल से विकार करता है और इसमें कर्म का उदय तो निमित्त मात्र है।

प्रश्न 14 – पारिणामिक भाव क्या बतलाता है?

उत्तर – शुद्ध चैतन्यभाव जीव का स्वभाव है।

प्रश्न 15 – औदयिक भाव क्या बतलाता है?

उत्तर – जीव का शुद्ध चैतन्य स्वभाव होने पर भी वर्तमान अवस्था में विकार है।

प्रश्न 16 – औपशमिक भाव क्या बतलाता है?

उत्तर – जीव का सर्व प्रथम श्रद्धागुण का औदयिक भाव दूर होना प्रारंभ होता है।

प्रश्न 17 – औदयिक भाव कैसे दूर होता है?

उत्तर – पारिणामिक भाव के आश्रय से।

प्रश्न 18 – क्षायोपशमिक भाव क्या बतलाता है?

उत्तर – जीव अनादिकाल से विकार करता हुआ भी जड़ नहीं हो जाता।

प्रश्न 19 – क्षायिक भाव क्या बतलाता है?

उत्तर – जीव के विकार का नाश हो सकता है।

प्रश्न 20 – किस भाव के बिना कोई जीव नहीं है।

उत्तर – पारिणामिक भाव के बिना।

प्रश्न 21 – किस भाव के बिना कोई संसारी जीव नहीं है।

उत्तर – औदयिक भाव के बिना।

प्रश्न 22 – किस भाव के बिना कोई छद्मस्थ नहीं है।

उत्तर – क्षायोपशमिक भाव के बिना।

प्रश्न 23 – किस भाव के बिना क्षायिक समकिती, क्षायिक चारित्रवंत और अरहंत तथा सिद्ध नहीं है।

उत्तर – क्षायिक भाव के बिना।

प्रश्न 24 – किस भाव के बिना धर्म की शुरूआत वाले नहीं हैं।

उत्तर – औपशमिक भाव के बिना।

प्रश्न 25 – स्वभाव भाव कौन सा भाव है?

उत्तर – परम पारिणामिक भाव।

प्रश्न 26 – आश्रय करने योग्य परम उपादेय कौन सा भाव है?

उत्तर – पारिणामिक भाव।

प्रश्न 27 – कारण परमात्मा, कारण समयसार और ज्ञायकभाव कौन से भाव को कहा जाता है?

उत्तर – परम पारिणामिक भाव को।

प्रश्न 28 – विकारीभाव कौन सा भाव है?

उत्तर – औदयिक भाव।

प्रश्न 29 – हेय कौन सा भाव है?

उत्तर – औदयिक भाव।

प्रश्न 30 – एकदेश उपादेय (प्रगट करने की अपेक्षा) कौन से भाव हैं?

उत्तर – औपशमिक, मोक्षमार्ग का क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव।

23. कारक

प्रश्न 1 – कारक किसे कहते हैं?

उत्तर – जो क्रिया का जनक हो, क्रिया निष्पत्ति में प्रयोजक हो, उसे कारक कहते हैं।

प्रश्न 2 – कारक कितने होते हैं? नाम बताइए।

उत्तर – कारक ६ होते हैं – कर्त्ता, कर्म, कारक, संप्रदान, अपादान, अधिकरण। सर्व द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय में ये छहों कारक एक साथ वर्तते हैं, इसलिये आत्मा और पुद्गल शुद्ध या अशुद्ध दशा में छहों कारकरूप स्वयं ही परिणमन करते हैं और अन्य कारकों (कारणों) की अपेक्षा नहीं रखते।

प्रश्न 3 – कर्त्ता किसे कहते हैं?

उत्तर – जो स्वतंत्रता (स्वाधीनता) से अपने परिणाम को करे, वह कर्त्ता है। (प्रत्येक द्रव्य अपने में व्यापक होने से अपने ही परिणामों का कर्त्ता है।)

प्रश्न 4 – कर्म (कार्य) किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस परिणाम को कर्त्ता प्राप्त करता है, वह परिणाम उसका कर्म है।

प्रश्न 5 – करण किसे कहते हैं?

उत्तर – जिससे कर्म किया जाता है, उसे करण कहते हैं।

प्रश्न 6 – सम्प्रदान किसे कहते हैं?

उत्तर – जिसके लिये कर्म किया जाता है, उसे सम्प्रदान कहते हैं।

प्रश्न 7 – अपादान किसे कहते हैं?

उत्तर – जिसमें से कर्म किया जाता है, उस ध्रुव वस्तु को अपादान कहते हैं। जैसे– पेड़ से पत्ता गिरता है। इसमें पेड़ अपादान है।

प्रश्न 8 – अधिकरण किसे कहते हैं?

उत्तर – जिसमें या जिसके आधार से कर्म किया जाता है, उसे अधिकरण कहते हैं।

24. पर्याप्ति

प्रश्न 1 – पर्याप्ति कितनी होती हैं? नाम बताइए।

उत्तर – पर्याप्ति छह होती हैं – आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन।

प्रश्न 2 – जीव पर्याप्तक कब कहलाते हैं?

उत्तर – सभी जीव शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने पर पर्याप्तक कहलाते हैं।

प्रश्न 3 – जीव अपर्याप्तक कब कहलाते हैं?

उत्तर – जिन जीवों की शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती, वे जीव अपर्याप्तक कहलाते हैं।

प्रश्न 4 – अपर्याप्तक जीव कितने प्रकार के होते हैं? नाम बताइए।

उत्तर – अपर्याप्तक जीव दो प्रकार के होते हैं – निवृत्ति अपर्याप्तक और लब्धि अपर्याप्तक।

प्रश्न 5 – कौन से जीव निवृत्ति अपर्याप्तक कहलाते हैं?

उत्तर – जिन जीवों को शरीर पर्याप्ति वर्तमान में पूर्ण नहीं हुई है, पर भविष्य में पूर्ण हो जावेगी; वे जीव निवृत्ति अपर्याप्तक कहलाते हैं।

प्रश्न 6 – कौन से जीव लब्धि अपर्याप्तक कहलाते हैं।

उत्तर – जिन जीवों के शरीर पर्याप्ति कभी पूर्ण नहीं होती अर्थात् जो शरीर पर्याप्ति पूर्ण किए बिना ही मर जाते हैं, वे जीव लब्धि अपर्याप्तक कहलाते हैं।

प्रश्न 7 – सभी पर्याप्ति कितने समय में पूर्ण होती हैं?

उत्तर – छहों पर्याप्तियों की शक्ति की पूर्णता एक अंर्तमुहुर्त में हो जाती है।

प्रश्न 8 – क्या सभी पर्याप्तियों का प्रारंभ और पूर्णता एकसाथ होती है?

उत्तर – सभी पर्याप्तियों का प्रारंभ युगपत् होता है, परन्तु उनकी पूर्णता क्रम से ही होती है।

प्रश्न 9 – क्या सभी जीवों को छहों पर्याप्तियाँ होती हैं?

उत्तर – नहीं, सभी जीवों को छहों पर्याप्तियाँ नहीं होती हैं। मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को ही छहों पर्याप्तियाँ होती हैं। एकेन्द्रिय जीव के चार और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं।

प्रश्न 10 – मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर – जीवादि पदार्थों का जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में विचार-अन्वेषण किया जाय उनको ही मार्गणा कहते हैं, उनके चौदह भेद हैं- गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार।

प्रश्न 11 – जीव समास किसे कहते हैं? वे कितने होते हैं? नाम बताइए।

उत्तर – जिसके द्वारा अनेक प्रकार के जीव के भेद जानें जा सके, उसे जीव समास कहते हैं। वे 14 होते हैं।

चौदह जीवसमास

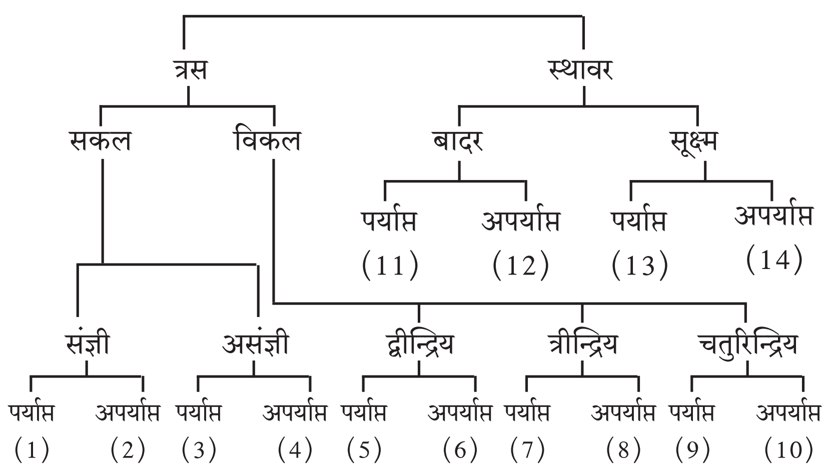

25. ध्यान

प्रश्न 1 – ध्यान कितने प्रकार के होते हैं ?नाम बताइए।

उत्तर – ध्यान चार प्रकार के होते हैं- आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ।

प्रश्न 2 – आर्त ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर – दुःख- पीड़ा रूप चिंतवन को आर्त ध्यान कहते हैं।

प्रश्न 3 – रौद्र ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर – निर्दयता/ क्रूरता में होने वाले आनंद रूप परिणामों को रौद्र ध्यान कहते हैं।

प्रश्न 4 – धर्म ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर – धर्म सहित ध्यान को धर्म ध्यान कहते हैं। धर्म माने वस्तु का स्वभाव और ध्यान माने एकाग्रता; वस्तुस्वभाव की ओर एकाग्रता ही धर्म ध्यान है।

प्रश्न 5 – शुक्ल ध्यान किसे कहते हैं? यह किन्हें होता है?

उत्तर – उत्तम संहनन वाले के अंतर्मुहूर्त तक एकाग्र होकर चिंता का निरोध शुक्ल ध्यान है । यह वज्र वृषभनाराच संहनन वालों को ही होता है। चौथे काल में ही होता है।

प्रश्न 6 – चारों ध्यानों में प्रत्येक ध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर – चारों ध्यानों में प्रत्येक ध्यान के चार -चार भेद हैं ।

प्रश्न 7 – संसार के कारण कौन से ध्यान हैं?

उत्तर – आर्तध्यान और रौद्रध्यान संसार के कारण हैं।

प्रश्न 8 – मुक्ति के कारण कौन से ध्यान हैं ?

उत्तर – धर्मध्यान और शुक्लध्यान मुक्ति के कारण हैं ।

प्रश्न 9 – घातियाकर्म का अभाव किस ध्यान से होता है ?

उत्तर – शुक्लध्यान के आरंभ के दो भेदों से घातिया कर्म का अभाव होता है।

प्रश्न 10 – अघातिया कर्म का अभाव किस ध्यान से होता है?

उत्तर – शुक्लध्यान के बाद के दो भेदों से अघातिया कर्म का अभाव होता है।

परमागम प्रवेशिका (भाग-4)

1. परमात्मा का स्वरूप

जैनमतानुसार जो वीतरागी और सर्वज्ञ होते हैं, उन्हें परमात्मा कहते हैं। जो राग-द्वेष रहित होते हैं, उन्हें वीतरागी कहते हैं तथा जो तीन लोक व तीन काल की समस्त बातों को एक साथ जानते हैं, उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं।

धर्मप्रचार करनेवाले सर्वोच्च पद के लिए जैनपरम्परा में सामान्यतया अरहंत, जिन, परमात्मा, परमेष्ठी, केवली, भगवान व तीर्थंकर - इन शब्दों का प्रयोग होता रहा है। इनमें से तीर्थंकरों को छोड़कर शेष सब पर्यायवाची ही हैं।

जैनधर्म में इस परमात्म दशा को मुख्यतया दो भागों में बाँटा गया है -१. निकल परमात्मा २. सकल परमात्मा।

1. निकल परमात्मा (सिद्ध) – कल का अर्थ होता है शरीर और निः का अर्थ होता है रहित; अतः शरीर रहित होने के कारण सिद्ध भगवान को निकल परमात्मा कहते हैं।

जो गृहस्थावस्था का त्यागकर, मुनिधर्म साधन द्वारा चार घातिकर्मों का नाश होने पर अनंत चतुष्टय (अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य) प्राप्त करके कुछ समय बाद अघाति कर्मों के नाश होने पर समस्त अन्य द्रव्यों का संबंध छूट जाने पर पूर्ण मुक्त हो गए हैं; लोक के अग्रभाग में किंचित् न्यून पुरुषाकार विराजमान हो गए हैं; जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने से समस्त आत्मिक गुण प्रकट हो गए हैं, वे सिद्ध हैं। उनके आठ गुण कहे गए हैं -

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्षम वीरज वान, निराबाध गुण सिद्ध के॥

१.क्षायिक सम्यक्त्व, २.अनंतदर्शन, ३. अनंतज्ञान,

४. अगुरुलघुत्व, ५. अवगाहनत्व, ६. सूक्ष्मत्व, ७. अनंतवीर्य, ८. अव्याबाध (अनंत सुख)।

सिद्ध भगवान गुणस्थानातीत होते हैं। उनके परमशुद्ध, कार्यपरमात्मा, लोकाग्रवासी, संसारातीत, निरंजन, निष्काम, साध्य परमात्मा, परमसुखी, ज्ञानाकारी, ज्ञानशरीरी, अशरीरी आदि अनेक नाम हैं। इन्हें देहमुक्त भी कहते हैं।

एक बार पूर्ण मुक्त हो जाने के पश्चात् जीव पुनः शरीर धारण नहीं करता है अर्थात् जैनमतानुसार आत्मा तो परमात्मा बनता है; संसारी तो मुक्त होता है; किन्तु मुक्त जीव पुनः बंधन को प्राप्त नहीं होते, सिद्ध जीव पुनः संसार में नहीं लौटते। सिद्ध अवस्था का प्रारंभ होता है, नाश कभी नहीं; अतः सर्वसिद्ध भगवान नियम से सादि-अनंत ही हैं।

जैनदर्शन में जीव जन्म-मरण का नाश कर भगवान बनते हैं; अतः भगवान के पुनर्जन्म या अवतार का प्रश्न ही नहीं उठता। सिद्ध अवस्था के अतिरिक्त अन्य कोई उत्कृष्ट अवस्था नहीं है।

2. सकल परमात्मा (अरहन्त) – अरहन्त अवस्था जीवनमुक्त अवस्था है। यद्यपि सिद्धावस्था की प्राप्ति ही जैनधर्म का लक्ष्य है, फिर भी इसके पूर्व प्रत्येक साधक को अरहन्त अवस्था प्राप्त होती है।

जो गृहस्थपना त्यागकर, मुनिधर्म अंगीकार कर, निजस्वभाव साधन द्वारा चार घातिकर्मों का क्षय करके, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हैं, केवलज्ञान प्राप्त कर वीतरागी व सर्वज्ञ होते हैं - वे समस्त भगवान अरहन्त कहलाते हैं।

शरीर सहित होने के कारण अरहन्त भगवान को सकल परमात्मा कहते हैं। उनका शरीर परम औदारिक होता है। परम औदारिक शरीर में अनेक अतिशय होते हैं। जैसे- उन्हें इन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता, वे जमीन से चार अंगुल ऊपर चलते हैं; उन्हें नींद नहीं आती, पसीना नहीं आता, भूख-प्यास नहीं लगती, बीमारी आदि शरीर संबंधी कोई दु:ख नहीं होता।

2. निर्जरा

अपने समय पर कर्मों के झड़ने को निर्जरा कहते हैं। वह दो प्रकार की होती है – सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा।

सविपाक निर्जरा – अपने समय स्वयं कर्मों का उदय में आ-आकर झड़ते रहना सविपाक निर्जरा है।

चारों गतियों के सभी जीवों को सदा यह निर्जरा होती है।

जब जीवों के कर्म अपने समय पर उदय में आकर झड़ते हैं, तब उस पापोदय के काल को जो जीव शान्ति से सह जाते हैं, तब उन्हें अकाम निर्जरा होती है अर्थात् जब किसी जीव को किसी विवशता वश भूख-प्यास बढ़ना, भूमि पर सोना, ब्रह्मचर्य पालना, मल-मूत्र रोकना आदि कार्य करने पर जो संताप होता है, उसे शान्ति से सह जाना अकाम निर्जरा कहलाती है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि अकाम निर्जरा सविपाक निर्जरा का ही एक रूप है।

अविपाक – तप के द्वारा पक्व-अपक्व सभी कर्मों का समय से पहले झड़ना अविपाक निर्जरा है।

साम्यता की वृद्धि सहित सम्यग्दृष्टि व्रतधारियों द्वारा कायक्लेशादि द्वारा की गई निर्जरा वास्तविक निर्जरा है। इसमें नवीन कर्मों का आगमन रोकने रूप संवर होता है। यही मोक्षमार्ग में उपयोगी है। मोक्ष का कारण है।

3. अध्यवसान (अध्यवसाय)

भेदविज्ञान न होने पर जीव की परपदार्थ सम्बन्धी समस्त प्रकार के अज्ञान भाव को अध्यवसान कहते हैं। इसका अनेक प्रकार से प्रयोग किया जाता है। जैसे – हिंसा अध्यवसान – मैं मारता हूँ। कर्मोदय अध्यवसान – मैं नारकी हूँ।

4. गुणश्रेणी निर्जरा

दर्शनमोह का उपशम करने वाले जीव को प्रथम समय में जितनी निर्जरा होती है, द्वितीय समय में उससे असंख्यात गुणी अधिक होती है और तृतीय समय में उससे भी असंख्यातगुणी – इसप्रकार दर्शनमोह के उपशम से अंतिम समय तक ले जाना चाहिए। इसे ही गुणश्रेणी निर्जरा कहते हैं।

यहाँ विशेष बात ध्यान देने योग्य यह है कि – चौथे गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि के तो निरंतर असंख्यातगुणी निर्जरा होती है और औपशमिक सम्यक्त्वी के औपशमिक सम्यक्त्व की उत्पत्ति के काल में ही असंख्यातगुणी निर्जरा होती है; लेकिन क्षयोपशम सम्यक्त्वी के गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती।

वर्तमान काल में क्षायिक सम्यग्दर्शन होता नहीं और औपशमिक सम्यक्त्व तो छोटे से छोटा अन्तर्मुहूर्त मात्र के लिए होता है तथा वह भी (कर्मभूमि में) भव में एक बार हो सकता है, अतः औपशमिक सम्यक्त्व की गुण श्रेणी निर्जरा को गौण कर शास्त्रों में यह भी कह दिया जाता है कि चौथे गुणस्थान में गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती। जैसे कि पं. टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि – 'चौथे गुणस्थान में कोई अपने स्वरूप का चिंतवन करता है उसके भी आस्रवबन्ध अधिक हैं तथा गुणश्रेणी निर्जरा नहीं है।'[1]

यही टोडरमलजी इसी मोक्षमार्गप्रकाशक में कहते हैं – 'द्रव्यलिंगी के कदापि गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती, सम्यग्दृष्टि के कदाचित् होती है और देश व सकल संयम होने पर निरन्तर होती है।'[2]

5. सत्ता

सत्ता दो प्रकार की होती है – महासत्ता और अवान्तर सत्ता। महासत्ता को सादृश्य–अस्तित्त्व और अवान्तर सत्ता को स्वरूप–अस्तित्व भी कहते हैं।

महासत्ता – जिसमें समानता के आधार पर एकता की बात की जाए उसे महासत्ता कहते हैं। यह अनेक वस्तुओं में व्याप्त सादृश्य अस्तित्व को सूचित करने वाली है। महासत्ता के दो भेद हैं – शुद्ध महासत्ता, अशुद्ध महासत्ता।

शुद्ध महासत्ता – 'सत' मात्र के आधार पर जिसमें विश्व की सारी वस्तुएँ समा जाएँ, कोई भी शेष न बचे, उसे शुद्ध महासत्ता कहते हैं। जैसे – प्रत्येक वस्तु 'सत्' है। इसमें सत्, सत्ता या अस्तित्व के आधार पर सभी द्रव्यों में समानता बताई गई है। विश्व में सभी वस्तुएँ हैं। 'है' के आधार पर जहाँ सभी द्रव्यों में समानता बताई जाए, वह शुद्ध महासत्ता है। जैसे– मैं भी हूँ और चश्मा भी है; अत: हम दोनों में 'है' (सत्ता) के आधार पर समानता है और आकाश के फूल में और मुझमें कोई समानता नहीं है; क्योंकि मैं हूँ और आकाश में फूल नहीं है। इसीप्रकार सभी सामान्य गुण सभी द्रव्यों में हैं। सभी सामान्य गुणों के आधार पर द्रव्यों में समानता बताना शुद्ध महासत्ता है। शुद्ध महासत्ता में सारे द्रव्य समा जाते हैं। इसमें सब कुछ आ जाता है।

अशुद्ध महासत्ता – जिसमें सब कुछ न समाए, पर बहुत कुछ आ जाए, वह अशुद्ध महासत्ता है। समूह वाचक सभी इसमें समाहित हो जाते हैं। जैसे – हम भारतीय हैं, हम राजस्थानी हैं। हम जैन हैं, हम दिगम्बर जैन हैं आदि सभी अशुद्ध महासत्ता के ही भेद हैं। शुद्ध महासत्ता और अवान्तरसत्ता के मध्यवर्ती (बीच के) सभी समूहवाचक

वाक्य इसके अन्तर्गत आते हैं।

अवान्तरसत्ता – वस्तुओं का पृथक्–पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व अवान्तरसत्ता है। जो अपने द्रव्य, गुण, पर्याय के बाहर न जाए वह अवान्तर सत्ता है। जैसे– मेरी अवान्तरसत्ता में मात्र 'मैं' शामिल है और कुछ नहीं। मैं और मेरा द्रव्य, मेरा गुण, मेरी पर्याय शामिल है। इसीप्रकार सभी द्रव्यों की अपनी–अपनी इकाई उनकी अवान्तरसत्ता है।

संक्षेप में कहें तो शुद्धा महासत्ता में सब कुछ समाहित है। अवान्तर सत्ता में 'मेरे' अतिरिक्त कोई भी शामिल नहीं; वह मात्र एक इकाई को ही विषय बनाता है और अशुद्ध महासत्ता में 'मैं' और 'सब कुछ' छोड़कर समूहात्मक सभी अवस्थाएँ समाहित हैं।

महासत्ता को ही सादृश्य अस्तित्व कहते हैं और अवान्तर सत्ता को स्वरूप अस्तित्व कहते हैं।

अकर्त्तावाद

एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं मानना ही अकर्त्तावाद है। जैसे – सभी द्रव्य अपनी–अपनी पर्यायों के कर्त्ता हैं, कोई भी पर का कर्त्ता नहीं है। न हम किसी को मार सकते हैं, न कोई हमें मार सकता है। न हम किसी को बचा सकते हैं, न कोई हमें बचा सकता है। न हम किसी को जीवन दे सकते हैं, न कोई हमें जीवन दे सकता है। हम सब आयुकर्म समाप्त होने पर मरते हैं।

न हम किसी को सुखी–दुःखी कर सकते हैं, न कोई हमें सुखी–दुःखी कर सकता है। हम अपनी ही भूल के कारण दुःखी हैं और हम स्वयं पुरुषार्थ से सच्चे सुखी हो सकते हैं। यही जैनदर्शन का **अकर्तावाद** है।

6. सम्यग्दर्शन के दोष

चलदोष – सम्यग्दर्शन के रहते हुए आप्त, आगम और पदार्थों के विषय में नाना विकल्प होना चल दोष है। यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूप में स्थित रहता है, तथापि सम्यक्त्व मोहनीय के उदय से उसे आप्त, आगम और पदार्थों के विषय में उसकी बुद्धि चलायमान होती रहती है, यही चलदोष है।

चलदोष होने पर जीव अपने द्वारा प्रतिष्ठित जिनबिम्ब और दूसरों के द्वारा स्थापित जिनबिम्ब में मेरे-तेरे की बुद्धि करने लगता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि चल दोष वाला जीव जिनबिम्ब में ही अपने-पराये का भेद करता है, अन्य कुदेवादिक को नहीं पूजता है।

मलदोष – मल का अर्थ मैल है। शंकादि दोषों से मलिन हो जाना ही सम्यग्दर्शन का मलदोष है। सम्यक्त्वमोहनीय के उदय से शुद्ध सम्यग्दर्शन में मलिनता उत्पन्न हो जाती है।

अगाढ़दोष – अगाढ का अर्थ स्थिर न रहना है। सम्यग्दृष्टि जीव लौकिक प्रयोजनवश कदाचित् तत्व से चलायमान होने लगता है। उदाहरणार्थ – 'अन्य, अन्य का कर्ता नहीं होता'- यह सिद्धांत है , और सम्यग्दृष्टि व्यक्ति इसे भली प्रकार जानता है, पर रागवश वह इस सिद्धांत पर स्थिर नहीं रह पाता। कदाचित् वह पारमार्थिक कार्य को भी लौकिक प्रयोजन का प्रयोजक मान बैठता है।

जिस प्रकार वृद्ध पुरुष की लकड़ी उसके हाथ में ही बनी रहती है और वह अपने स्थान को न छोड़ती हुई भी कुछ कांपती रहती है; उसी प्रकार क्षयोपशम सम्यग्दर्शन देव, गुरु, तत्त्वादिक की श्रद्धा में स्थित रहते हुए भी सकम्प होता है। उसको अगाढ़ वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं।

इसप्रकार सम्यकत्व मोहनीय के उदय से उक्त तीन दोष होते हैं। ये तीनों एक हैं फिर भी भिन्न-भिन्न अभिप्राय की दृष्टि से यहाँ इन्हें पृथक्-पृथक् रूप से परिगणित किया है।

7. वैभाविक गुण/शक्ति

जिस शक्ति के निमित्त से दूसरे द्रव्य का संबंध होने पर विभाव परिणति होती है, उसे वैभाविक गुण कहते हैं।

प्रत्येक द्रव्य में दो प्रकार के गुण होते हैं – सामान्य गुण और विशेष गुण। वैभाविक गुण विशेष गुण है। इस गुण के कारण परद्रव्य के निमित्त से, स्वयं अपनी योग्यता से अशुद्ध पर्यायें होती हैं।

ये दोनों गुण स्वभाव से हैं तथा द्रव्य में सदा रहते हैं। इन गुणों में वैभाविकी शक्ति भी स्वतः सिद्ध है, स्वयं सिद्ध है। यद्यपि अस्तित्व स्वभाव वाला द्रव्य अनादि से है, तथापि परिणमनशील होने से उसमें दो प्रकार की क्रिया होती है – (१) स्वभाविकी क्रिया और (२) वैभाविकी क्रिया।

वैभाविकी क्रिया के निमित्त प्रतिसमय अलग-अलग होते हैं। ये वैभाविक परिणमन निमित्त सापेक्ष होकर भी अपनी उस काल में प्रगट होने वाली योग्यतानुसार ही होता है।

वैभाविक शक्ति के विभावरूप परिणमन के कारण जीव व पुद्‌गलों के विभावरूप परिणमन होता है। विभावरूप परिणमन के समय पुद्‌गलपरमाणुओं की स्कंधरूप अवस्था होती है तथा जीव की विकारी अवस्था बनी रहती है।

वैभाविक शक्ति का विभावरूप परिणमन ही विकृति या अशुद्धता है। इस शक्ति के कारण द्रव्य का स्वभाव नहीं बदलता, पर उसमें मलिनता आ जाती है, विकृति आ जाती है। जैसे – संसारी अवस्था के जीव में विकृतियाँ तो बनी रहती हैं, पर इन विकृतियों के कारण जीव अपना स्वरूप नहीं छोड़ता है, किन्तु इस अवस्था के कारण जीव दुःखी रहता है।

यह वैभाविक शक्ति जीव व पुद्‌गल दोनों द्रव्यों में है, जो कि

बंध का कारण है। यहाँ इतना विशेष कि वैभाविकी शक्ति जीव-पुद्गल के परस्पर योग से बंध कराने में समर्थ होती है, योग के बिना वह बंध कराने में समर्थ नहीं है। विभावरूप से परिणमती वैभाविक शक्ति से जीव व पुद्गल में बंधने व बांधने की शक्ति है। इसी के कारण संसारी जीव पुद्गलकर्म से बंधते हैं। हाँ, इतना विशेष है कि जैसे पुद्गल का पुद्गल से सजातीय बंध होता है, वैसे जीव का सजातीय बंध नहीं होता। उसका विजातीय बंध ही होता है और पुद्गल का सजातीय व विजातीय – दोनों बंध होते हैं। अतः संसारी जीव और अनन्त पुद्गल दोनों में ही स्वाभाविक व वैभाविक दोनों परिणमन होते हैं। फर्क इतना ही है कि संसारी जीव के एकबार शुद्ध हो जाने के बाद फिर अशुद्धता नहीं आती, जबकि पुद्गल स्कंध अपनी शुद्ध दशा परमाणुरूपता में पहुँचकर भी फिर अशुद्ध हो जाते हैं। पुद्गल की शुद्ध अवस्था परमाणु है और अशुद्ध दशा स्कन्ध अवस्था है। पुद्गल द्रव्य स्कन्ध बनकर फिर परमाणु अवस्था में पहुँच जाते हैं और फिर परमाणु से स्कन्ध बन जाते हैं।

वैभाविक शक्ति का कभी नाश नहीं होता। जीव की संसारी व सिद्ध दोनों अवस्थाओं में वह जीव में विद्यमान रहती है; क्योंकि शक्ति होने के कारण अन्य स्वभाविकी शक्तियों की तरह वह भी नित्य ही रहती है, अन्यथा क्रम से एक-एक शक्ति का नाश होते-होते द्रव्य का ही नाश हो जाएगा। विशेष इतना कि जीव की सिद्ध अवस्था में वैभाविकी शक्ति बंध का कारण नहीं है; क्योंकि कर्मों का संबंध छूट जाने पर वैभाविकी शक्ति में बंध कराने की सामर्थ्य नहीं रहती। यही कारण है कि सिद्ध जीवों में विद्यमान वैभाविकी शक्ति उनके बंध का कारण नहीं होती।

यह वैभाविकी शक्ति सम्पूर्ण कर्मों का अभाव होने पर अपने भावों में ही स्वयं स्वाभाविक परिणमनशील हो जाती है; क्योंकि द्रव्य की सब शक्तियाँ परिणमनस्वभावी हैं, पारिणामिकी हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि वैभाविक गुण जीव और पुद्गल- इन द्रव्यों में ही हैं, शेष चार द्रव्यों में नहीं। मुक्त जीवों में इस गुण की शुद्ध स्वभाविक पर्याय होती है।

संहनन

प्रश्न 1 – संहनन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर की हड्डियों का बन्धन विशेष होता है, उसे संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 2 – वज्रवृषभनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय हड्डियाँ, वज्रमय वेष्टन और वज्रमय कीलियाँ होती हैं, उसे वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न 3 – वज्रनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय हड्डियाँ और वज्रमय कीलियाँ होती हैं, परन्तु वेष्टन वज्रमय नहीं होते, उसे वज्रनाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न 4 – नाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय विशेषण से हड्डियाँ, वेष्टन और कीलियाँ होती हैं, उसे नाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न 5 – अर्द्धनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियों की सन्धियाँ अर्द्धकीलित होती हैं, उसे अर्धनाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न 6 – कीलक संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित होती हैं, उसे कीलक संहनन कहते हैं।

प्रश्न 7 – असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियाँ मात्र माँस, स्नायु आदि से लपेटकर संघटित की गयी होती हैं, उसे असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन कहते हैं।

8. पंचाचार

अपनी शक्ति के अनुसार निर्मल किए गए सम्यग्दर्शनादि में जो यत्न किया जाता है, उसे आचार कहते हैं।

ये पाँच होते हैं – दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार।

दर्शनाचार – चिदानन्द स्वरूप में परिणमन अर्थात् आचरण दर्शनाचार है। अथवा सम्यग्दर्शन में आचरण वही निश्चय दर्शनाचार है। इसकी निर्मलता सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की निर्मल परिणति से होती है।

ज्ञानाचार – उसी शुद्धात्मा को संशय, विमोह रहित स्वसंवेदन रूप भेदज्ञान द्वारा मिथ्यात्व रागादि रहित परभावों से भिन्न जानना सम्यग्ज्ञान है और उसरूप परिणमन (आचरण) वही निश्चय ज्ञानाचार है। इसमें आठ भेद हैं – काल, विनय, उपधान, बहुमान अनिह्नव, अर्थ, व्यंजन और तदुभय संपन्न।

स्वाध्याय का काल; मन-वचन-काय से शास्त्र का विनय यत्नपूर्वक करना, पूजा सत्कारादि से पाठ करना, अपने पढ़ाने वाले गुरु का बहुमान करना, अपने पढ़े हुए शास्त्र का नाम छिपाना नहीं, वर्ण-पद वाक्य को शुद्धि से पढ़ना, अनेकान्त स्वरूप अर्थ की शुद्धि और अर्थ सहित पाठादिक की शुद्धि होना – यह ज्ञानाचार के आठ भेद हैं।

चारित्राचार – रागादि समस्त संकल्प-विकल्प रहित शुद्धात्मा में मग्न होना निश्चय चारित्र है, वीतराग चारित्र है। उसी रूप परिणमन, आचरण निश्चय चारित्राचार है।

इसके आठ भेद हैं – पांच समिति व तीन गुप्ति।

ईर्या (चलना) भाषा, ऐषणा (आहार), आदान-निक्षेपण और

प्रतिष्ठापन (मल-मूत्र-कफ क्षेपण) यह पाँच समिति हैं।

मन-वचन-काय तीन गुप्ति हैं।

तपाचार – समस्त परद्रव्य की इच्छा को रोककर निज स्वरूप में परिणमन निश्चय तपाचार है। यह १२ प्रकार है। ६ अंतरंग तप व ६ बहिरंग तप। बाह्यतप, अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, काय-क्लेश और विविक्त शय्यासन। अंतरंगतप प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

वीर्याचार – निश्चय आचार की रक्षा के लिए अपनी शक्ति नहीं छिपाना निश्चय वीर्याचार है अथवा शुद्धात्म स्वरूप में अपनी शक्ति प्रगट करना निश्चय वीर्याचार है। अपनी शक्ति प्रगट कर मुनिव्रत आचरण व्यवहार वीर्याचार है। समस्त अन्य आचारों में प्रवृत्ति कराने वाली शक्ति वीर्याचार है।

भेदविज्ञान के स्तर

1. सर्वप्रथम प्रकट बाह्य पदार्थों से भेदविज्ञान करना है। जिसमें माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र, मकान आदि से भेदविज्ञान किया जाता है। ये मैं नहीं, ये मेरे नहीं, मैं इनका कर्त्ता-भोक्ता नहीं ऐसा जाना जाता है, माना जाता है।

2. दूसरे स्तर पर देह से भेदविज्ञान किया जाता है। आत्मा देह में रहता है, पर देह नहीं है; ऐसा जाना-माना जाता है। इसमें देह में रहते हुए आत्मा को देह से भिन्न देखना है।

3. तीसरे स्तर पर विकारी भावों (मोह, राग, द्वेष) से भेदविज्ञान किया जाता है। ये भाव यद्यपि आत्मा में ही उत्पन्न होते हैं, आत्मा से इनका क्षणिक तादात्म्य संबंध भी है, फिर भी वे पर के लक्ष्य से उत्पन्न होते हैं, दुखदायी हैं; अत: पर ही हैं।

4. चौथे स्तर पर निर्मल पर्याय से भेदविज्ञान किया जाता है; क्योंकि पर्याय में रहते हुए पर्याय से पार देखना है। पर्याय में एकत्व बुद्धि नहीं करनी है; क्योंकि पर्याय क्षणिक है।

लेखिका की अन्य कृतियाँ

01. जैन नर्सरी (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
02. जैन के.जी. भाग-1 (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
03. जैन के.जी. भाग-2 (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
04. जैन के.जी. भाग-3 (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
50-06. जैन कलर बुक भाग 1-2 (ड्राइंग बुक)
07-10. जैन जी.के. भाग-1 से 4 तक (हिन्दी, अंग्रेजी)
11-16. जैन जी.के. भाग-5 से 10 तक (हिन्दी)
17-18. चलो पाठशाला, चलो सिनेमा भाग 1-2
19. सीखें हम गाते-गाते
20. शब्दों की रेल
21-23. आगम प्रवेश भाग-1,2,3
24. मुझमें भी एक दशानन रहता है
25. संस्कार का चमत्कार (दादी की कहानी)
26. बढ़ते कदम
17. राम कहानी
28. विचार के पत्र : विकार के नाम
29. तलाश : सुख की
30. मुक्ति की युक्ति
31. एक संभावना यह भी
32. सत्ता का सुख
33. बालबोध प्रशिक्षण गाईड
34. प्रवेशिका प्रशिक्षण गाईड
35. अर्चना गाईड
36. नयचक्र गाईड (अध्यात्म के नय)
37. आगम के नय
38. अनुपम खोज (सप्तभंगी टीका)
39. परीक्षामुख प्रवेशिका (टीका)
40. उपादान निमित्त दोहा (टीका)
41. प्रमाणज्ञान
42. आत्मानुभूति कैसे?
43. जैनदर्शनसार
44. आचार्य अमृतचन्द्र और उनका पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (लघु शोध)
45. आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार : एक समालोचनात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध)
46. मिनी समयसार
47. समयसार प्रश्नोत्तरमाला भाग-1
48-50. परमागम प्रवेशिका भाग-1, 2, 3/4
51. प्रमाणज्ञान : सम्यग्ज्ञान

जैन गेम्स

1. नो टाइम पास
2. हमारी लाईफ
3. लगे रहो जीवराज
4. चौबीसी (Poster)
5. Maze to Moksh

E-books

01. मिनी समयसार भाग -1
02. मिनी समयसार भाग -2
03. परमागम प्रवेशिका भाग - 1
04. परमागम प्रवेशिका भाग - 2
05. परमागम प्रवेशिका भाग - 3
06. परमागम प्रवेशिका भाग - 4
07. मीडियम समयसार भाग - 1
08. प्रमाणज्ञान : सम्यग्ज्ञान
09. समयसार प्रश्नोत्तरमाला : भाग-1